भूमिका

तंत्र: हृदय की तीर्थयात्रा—

मनुष्य जैसे—जैसे सुसंस्कृत होता चला गया, तंत्र की जीवन शैली से बिछुडता चला गया। उसने संस्कृति की विशाल प्रतिसृष्टि का सृजन तो किया लेकिन तंत्र की ओर मुख मोड़कर। धीरे— धीरे प्रतिष्ठित समाज से उखड़कर तंत्र, मेघदूत के अभिशप्त यक्ष की भांति अज्ञातवास में समय व्यतीत करने लगा। तंत्र और तांत्रिक, दोनों ही शब्द निंदा व्यंजक हो गये।

सुसंस्कृत मनुष्य के शब्दकोश में तंत्र शब्द कितना ही गर्हित क्यों न हो, वह भेष बदलकर, अन्य उपसर्गों का हाथ थामकर मनुष्य के जीवन में चुपचाप जीता चला आया है। हमें 'तंत्र' स्वीकार नहीं है लेकिन स्व—तंत्र या पर—तंत्र का हम खूब प्रयोग करते हैं। किसी के ध्यान में नहीं आता कि वही बहिष्कृत तंत्र 'स्व' या 'पर' की ओट में हमारे बीच पनप रहा है।

तंत्र से मुक्त होना मुश्किल है क्योंकि तंत्र स्वभाव है। जो स्वयं का होना है उससे हम कैसे दूर जा सकते हैं? कितनी दूर जा सकते हैं? तंत्र की निंदा यही दर्शाती है कि मनुष्य सहज स्वाभाविक जीवन से कितना च्यूत हो चुका है।

संस्कृति ने मन को विकसित कर लिया, तन की अवहेलना कर। पुराने संत—महंत कहते रहे, तन पांच तत्वों से बना है; तन मिट्टी है, मिट्टी में मिल जायेगा। तन के तिरस्कार के गीत ध्यानी और योगी युगों—युगों से गाते रहे : काया नहीं तेरी, नहीं तेरी, मत कर मेरी, मेरी।

इस वातावरण में, इन संस्कारों में पला हुआ साधारण आदमी तन के साथ मित्रता कैसे करे? परिणामत: तन एक नेसेसरी इविल, एक अपरिहार्य अशुभ की भांति मनुष्य की छाती पर बोझ बनकर जीता रहा—और उसके साथ तंत्र भी। क्योंकि तंत्र तन को परम आदर देता है। इस शब्द की बुनियाद में ही तन है जो तन के रहस्य में उतरता है वह तन्—त्र।

और तन का मतलब केवल पार्थिव शरीर नहीं है। तन अर्थात आवरण, कवच, पात्र। अस्तित्व की संरचना कुछ ऐसी है कि यहां प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई आवरण है, शरीर है। शब्द, अर्थ का शरीर है। अर्थ, भाव का शरीर है। भाव, विचार का शरीर है। शरीर के बिना कोई वस्तु हो ही नहीं सकती। इस कारण भी तंत्र से मुक्त होना संभव नहीं है। हा, यदि नींव के बिना कभी कोई भवन बनाया जा सके तो जीवन तंत्र से मुक्त हो सकता है।

तंत्र का आरंभ तन से होता जरूर है लेकिन वहीं उसका अंत नहीं है। तंत्र सूक्ष्म से सूक्ष्मतर शरीरों की ओर यात्रा करता है। शरीर, भाव, आत्मा, अस्तित्व, सभी तंत्र का विस्तार हैं। तंत्र की बांहें अति विराट हैं। वे फैलती जाती हैं। उसके आलिंगन में सब समा जाता है—धरती भी, अंबर भी।

तंत्र हृदय की तीर्थयात्रा है। इस तीर्थयात्रा पर जाने के लिए मानवता अब तक तैयार नहीं थी। बुद्धि के अरण्य में खूब भटकने के बाद अब हृदय के सरोवर में रस—स्नान के लिए उसका सूखा कंठ आतुर हुआ है।

एक तरफ तंत्र की राह पर चलनेवाले राही मौजूद हुए और दूसरी तरफ रहगुजर भी प्रकट हो गया। ओशो की गंगोत्री से तंत्र की अदृश्य सरिता समस्त वैभव के साथ प्रवाहित हुई। उन्होंने तंत्र को इतनी प्रतिष्ठा दी कि उस सिंहासन पय एक साथ तंत्र के कई पथ प्रतिष्ठित हुए। तिलोपा का दि सांग ऑफ महामुद्रा, लाओत्से का ताओ और शिव—पार्वती संवाद में गूंथा हुआ विज्ञान भैरव तंत्र, सभी तंत्र के ही विभिन्न रूप हैं। यों तो तंत्र

अपनी आत्यंतिक ऊंचाई पर साधना या तपस्या के पार नील आकाश में जीता है लेकिन मनुष्य तो मन की कंटीली झाड़ियों में उलझा हुआ है। उसे अ—मन के अंतरिक्ष में कैसे ले जाया जाये? इस उलझन को सुलझाने के लिए किसी मनीषी ने तंत्र के गुप्त धन को विज्ञान भैरव तंत्र के रूप में उदघाटित किया है।

इन सूत्रों में, शिव पार्वती को बहुत आत्मीयता से मन के पार जाने के उपाय बताते हैं। ये उपाय सूत्रात्मक रूप से विज्ञान भैरव तंत्र में संकलित किये गये हैं। जिन ऋषि या महर्षि ने इन विधियों को खोजा होगा वे जरूर बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक रहे होंगे। वे मन की कार्य प्रणाली को गहराई से समझते हैं। इसीलिए उन्होंने इन विधियों के जरिये मन के पार जाने के छोटे—छोटे द्वार खोज लिए।

प्रत्येक विधि मन को मात देने की युक्ति है। गिने—चुने शब्दों में शिव मन के जंतर—मंतर में उतर कर कुछ झरोखे पार्वती के आगे खोलते जाते हैं—

'ज्यों ही कुछ करने की वृत्ति हो, रुक जाओ।'

'किसी पदार्थ को देखे बिना देखो। थोड़े ही क्षणों में तुम बोध को उपलब्ध हो जाओगे।'

'किसी गहरे कुएं के किनारे खडे होकर उसकी गहराइयों में निरंतर देखते रहो—जब तक विस्मय—विमुग्ध न हो जाओ।'

इन सब विधियों में इंद्रियों के बाहर फैले हुए संसार की निंदा नहीं है। इंद्रियों के साथ मन जो बाहर की ओर प्रवाहित होता रहता है उसका प्रत्याहार है। मन का जगत से नाता तोड़ दो क्योंकि यह नाता झूठ है। जगत अपनी जगह है, सुंदर है, लेकिन उसे हम अपने भीतर क्यों बसा लें? विषयों का संसार मन का आहार है। यह आहार त्याग कर मन को स्वयं के पास ले आने के उपाय तंत्र सिखाता है। एक अर्थ में तंत्र मन का उपवास है। उपवास यानी अनशन नहीं, अपने साथ निवास करना, अपने ही संग रहना।

इन सूत्रों का एक और अर्थपूर्ण पहलू है : इन तंत्र विधियों को अभिव्यक्त करने के लिए ग्रंथ कर्ता ने शिव —पार्वती के युगल को चुना है। इस काम के लिए गुरु —शिष्य को भी चुना जा सकता था। लेकिन उसे शिव—पार्वती अधिक उचित लगे। पार्वती शिव का अभिन्न अंग हैं। वे दोनों एक ही पूर्णता के दो अर्ध हैं। इतनी घनिष्ठता में ही मन का द्वार खोलने की ये छोटी—छोटी कुंजियां दी जा सकती हैं। इन सूत्रों के बहाने शिव अपने शून्य को पार्वती में उंडेल रहे हैं।

ओशो ने भी इन सूत्रों का विवेचन अपने शिष्यों के सामने किया है—शिष्य, जिन्हें वे मित्र कहते हैं। ओशो के साथ उनके शिष्यों का जो नाता है वह प्रेम का है, जान का नहीं। शब्द केवल वाहन हैं, उनमें से बहता हुआ जो चला आ रहा है वह है उनका शून्य, उनकी उमड़ती हुई करुणा।

तंत्र—सूत्र सिर्फ पढने के लिए नहीं कहे गये हैं। इनके प्रयोग में ही इनकी सार्थकता है। यह सदी सौभाग्यशाली है कि ओशो जैसी शिव—चेतना द्वारा ये सूत्र पुनरुज्जीवित हुए हैं। इनके द्वारा ओशो ने तंत्र का द्वारहीन द्वार खोल दिया है जिसमें हर तरह का व्यक्ति प्रवेश कर सकता है।

उदार चरित पुरुषों के लिए कुछ भी त्याज्य नहीं है। मेरे देखे, तंत्र ओशो के उदार हृदय का प्रतीक है। इसका असीम विस्तार हर तरह के खोजी के लिए एक निमंत्रण है।

मा अमृत साधना